SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

भारतीय ज्ञान परंपरा में कर्म–सिद्धांत एवं पुनर्जन्म की अवधारणा

सुजीत कुमार, शोधार्थी, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखंड, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
सुजीत कुमार, शोधार्थी
E-mail : sujeetkumar11021996@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 08/04/2025
Revised on : 07/06/2025
Accepted on : 17/06/2025
Overall Similarity : 00% on 09/06/2025

शोध सार

कर्म–सिद्धांत के अनुसार जीवों के द्वारा संपादित कर्म या तो अच्छा हो सकता है या बुरा और ये दोनों प्रकार के कर्म अपने विशिष्ट प्रकार के परिणाम उपस्थित करते हैं। एक जीव अपने जीवनकाल में बहुत–से कर्म संपादित करता है और यह संभव नहीं कि वह अपने सभी कर्मों का फल एक ही जीवनकाल में भोग ले। चूंकि कर्मों का नाश तब तक नहीं होता जब तक उन कर्मों का फल कर्ता के द्वारा भोग नहीं लिया जाए। जीव द्वारा संपादित कर्म संचित रहते हैं और इन्हीं संचित कर्मों का फल भोगने के लिए जीव को पुनर्जन्म लेना पड़ता है। किसी प्राणी का सुख या दुःख भोगना अतीत में किये गये उसके अपने ही कर्मों का फल होता है। इस प्रकार कर्म–सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता स्वयं ही होता है। जिस प्रकार भौतिक जगत् में कार्य–कारण का सिद्धांत कार्य करता है, उसी प्रकार धार्मिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक जगत् में कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत कार्य करता है। कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धांत ने इस सोच पर विराम लगा दिया कि संसार अनियंत्रित है और स्रष्टा जीवों को मनमाने ढंग से सुख, दुःख आदि प्रदान करता है। यह सिद्धांत लोगों को बुरे कर्म करने से रोकता है एवं सत्कर्म करने की प्रेरणा देता है।

मुख्य शब्द

भारतीय ज्ञान परंपरा, कर्म सिद्धांत, पुनर्जन्म, आत्मा, नैतिकता.

भूमिका

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। उसके मन–मष्तिष्क में विचारों की धारा प्रवाहित होते रहती है। सोचने–विचारने और चिन्तन–मनन का यही सामर्थ्य उसे शेष चेतन–अचेतन जगत् से भिन्न एवं विशेष बनाता है। वेदों के काल से ही मनुष्यों के मन में यह जिज्ञासा

रही है कि मरने के बाद क्या होता है? क्या मृत्यु के साथ ही पूर्ण रूप से जीवन समाप्त हो जाता है या उसके बाद भी जीवन है? व्यक्ति के अच्छे या बुरे कर्मों का फल क्या होता है ? स्वर्ग–नरक की अवधारणा की उद्भावना भी इसी चिन्तन का परिणाम है। समान परिस्थिति में जन्म लेने के बावजूद दो या अधिक व्यक्तियों के जीवन–स्तर, उनके सुख–दुःख भोग में अन्तर की क्या वजह है? क्यों एक दुष्ट व्यक्ति भी अपने जीवन में सुख भोग रहा होता है और एक भला आदमी भी अपने जीवन में दुःख भोग रहा होता है? वेदों के काल से ही मनुष्य इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढने में लगा हुआ है। उपनिषदों में इस विषय पर विशेष रूप से चर्चा की गई है। चार्वाक को छोड़कर लगभग सभी भारतीय दर्शनों ने कर्म सिद्धांत एवं पुनर्जन्म की अवधारणा को अंगीकार किया है। पाश्चात्य जगत् में भी इस विषय को लेकर विशाल साहित्य की रचना की जा चुकी है।

कर्म–सिद्धांत कहता है कि 'जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है अर्थात् जैसा हम बोते हैं वैसा ही हम काटते हैं। 'प्रत्येक अच्छे या बुरे कर्म का विशिष्ट प्रकार का परिणाम होता है। कर्म–सिद्धांत भौतिक संसार में सर्वमान्य कार्य–कारण के सार्वभौम नियम की सीमा को बढ़ाकर मानसिक, नैतिक एवं अध्यात्मिक धरातल तक ले आता है। कर्म का सिद्धांत मनुष्य के जीवन में मिल रहे सुख एवं दुःख के कारणों की व्याख्या अतीत में किये गये कर्मों के आधार पर करने का प्रयास करता है। कर्म–सिद्धांत ही पुनर्जन्म के सिद्धांत तक ले जाता है। एक जीवन में किये गए सभी कर्मों के फल उसी जीवन में नहीं मिल जाते। वर्तमान जीवन में किये गये जिन कर्मों के फल इस जीवन में नहीं मिल पाते, वे भविष्य जीवन में मिलते हैं। अतीत जीवन में सम्पादित कर्म वर्तमान जीवन के रूप को तय करते हैं तथा वर्तमान जीवन के कर्म अतीत जीवन के शेष कर्मों के साथ भावी जीवन का रूप निश्चित करते हैं। पुनर्जन्म की अवधारणा को माने बिना कर्म–सिद्धांत की अवधारणा सिद्ध ही नहीं हो सकती है। कर्म का सिद्धांत समाज में लोगों के जीवन में विद्यमान विषमता की व्याख्या करने का संतोषजनक प्रयत्न करता है। यह सिद्धांत लोगों को इस बात का भरोसा दिलाता है कि विश्व में एक नैतिक व्यवस्था है। किसी व्यक्ति के जीवन में सुख या दुःख उसके अपने ही कर्मों का फल है। यदि कोई व्यक्ति बुरे कर्म करने के बावजूद अपने जीवन में सुखी है तो यह उसके अतीत जीवन के सुकर्मों का फल है और इस जीवन के बुरे कर्मों का फल इसी जीवन के अन्तिम चरण में या भविष्य जीवन में वह भोगेगा। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति अच्छे कर्म करने के बावजूद अपने जीवन में दुःख भोग रहा है तो यह उसके अतीत जीवन के दुष्कृत्यों का फल है। अपने वर्तमान जीवन के सुकर्मों का फल वह इस जीवन के अंतिम चरण में या भावी जीवन में भोगेगा। कर्म–सिद्धांत दुःखी व्यक्ति को यह आश्वासन देता है कि यदि आपने अच्छे कर्म किये हैं या अच्छे कर्म कर रहे हैं तो निश्चिन्त रहिये, आपको अपने सुकर्मों का फल इसी जीवन में या भावी जीवन में अवश्य मिलेगा। इसी प्रकार यह सिद्धांत दुष्ट व्यक्ति को बुरे कर्म करने से रोकता है। यह सिद्धांत दुष्टों को सतर्क करता है कि जो कुकृत्य आपने किये हैं उसकी सजा आपको अवश्य मिलेगी, इसलिए आप बुरे कर्म करना बन्द करिये, नहीं तो जितने बुरे कर्म करेंगे उन सभी बुरे कर्मों का दुष्परिणाम भोगना ही पड़ेगा। संक्षेप में कहें तो कर्म–सिद्धांत 'वर्तमान जीवन को अतीत जीवन या जीवनों में किये गये कर्मों का फल मानता है एक प्रकार का प्रायश्चित मानता है। यदि कोई व्यक्ति सोचता है कि वह अपने बुरे कर्मों का नाश सत्कर्मों से कर देगा, तो यह संभव नहीं य दुष्कृत्यों का भोग तो भोगना ही पड़ेगा। दुष्कृत्य के लिए जो दण्ड निश्चित है, वह व्यक्तिगत एवं स्वयं होने वाला होता है। इस प्रकार यहाँ संयोग एवं भाग्य का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।'[1]

कर्म–सिद्धांत के अनुसार तीन प्रकार के कर्म माने गये हैं दृसंचित कर्म, प्रारब्ध कर्म, क्रियमाण या संचीयमान कर्म। इनमें संचित कर्म वे हैं जिन्हें अतीत जीवनों में किया गया है और जिन्होंने अपना फल देना अभी शुरु नहीं किया है। ये संग्रहित कर्म हैं जो कर्ता को अपना फल भविष्य में देने वाले हैं। प्रारब्ध कर्म भी अतीत में किये गये कर्म हैं जिन्होंने वर्तमान में अपना फल देना प्रारम्भ कर दिया है। व्यक्ति के वर्तमान जीवन का स्वरूप प्रारब्ध कर्म ही निश्चित करते हैं। व्यक्ति को अपने वर्तमान जीवन में इन्हीं प्रारब्ध कर्मों का फल प्राप्त होते रहता है। इन्हीं प्रारब्ध कर्मों को दैव या भाग्य भी कहा जाता है। संचीयमान कर्म वर्तमान जीवन में किये जा रहे कर्म होते हैं इसलिए इन्हें क्रियमाण कर्म भी कहते हैं। संचीयमान एवं संचित कर्म भावी जीवन के स्वरूप को निर्धारित एवं निश्चित करते हैं। कभी–कभी संचीयमान कर्म भी वर्तमान जीवन में ही फलित होने लग जाते हैं जब वे (शुभ या अशुभ कर्म) अपनी

पराकाष्ठा को प्राप्त हो जाते हैं।[2] आचार्य पद्यपाद ने अपने ग्रन्थ 'विज्ञानदीपिका'में संचीयमान कर्म की उपमा खेत में खड़े अन्नों से दी है, संचित कर्म की उपमा घर में रखे अन्नों से दी है और प्रारब्ध कर्म की उपमा पेट में पड़े अन्नों से दी है। कर्म–सिद्धांत में श्रद्धा रखने वाले विचारकों के मत में वर्तमान जीवन अतीत जीवन के कर्मों का फल है तथा भावी जीवन वर्तमान जीवन के कर्मों का फल। इस प्रकार कर्म–सिद्धांत अतीत, वर्तमान और भविष्य जीवनों को एक कार्य–कारण श्रृंखला में बांध देता है। इस सिद्धांत के अनुसार जीव अपना भाग्यविधाता स्वयं है, वह जीवन में अपने ही किये कर्मों का फल भोगता है। इस सिद्धांत का मानना है कि व्यक्ति के द्वारा संपादित कर्मों के फल का नाश नहीं होता और नहीं किये हुए कर्मों का फल भी प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कर्म–सिद्धांत नैतिक क्षेत्र में कार्य करने वाला वह नियम है जो विश्व में निहित व्यवस्था की सफल दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

कर्म–सिद्धांत की सर्वप्रथम झलक हमें वेद में दिखाई पड़ता है। ऋषि अग्नि देवता से निवेदन करता है कि वे मृत लोगों को उन लोकों में स्थान दें जो अच्छे कर्म करने वाले लोगों के लोक हैं ताभिर्वहैनं सुकृतां उलोकम्।[3] 'सुकृतां लोकम्' यह पदावली अथर्ववेद[4] एवं वाजसनेयी संहिता[5] में भी प्राप्त होती है। ऋग्वेद में इन्द्रदेव को सोमरस अर्पित करता हुआ यजमान प्रार्थना करता है कि उसे अनन्त द्युति वाले स्वर्ग में स्थान दिया जाए जहाँ आनन्द एवं आह्लाद हैं जहाँ कामनाएं पूर्ण होती हैं।[6] वैदिक समय में ऐसी मान्यता थी कि स्वर्ग नाम का एक ऐसा लोक है जहाँ सुकर्मों के फल का अधिक से अधिक आनन्द प्राप्त होता है। ऋग्वैदिक लोग लौकिक फलों यथा –संतति एवं संपत्ति के लिए तो देवताओं की स्तुतियाँ तो करते ही थे, किन्तु स्वर्ग तथा अमरत्व उनकी स्तुतियों का मुख्य प्रयोजन होता था। उनका विश्वास था कि यदि वे स्तुति आदि सुकृत्यों द्वारा देवताओं को प्रसन्न करेंगे तो उन्हें देवता स्वर्ग एवं अमरत्व प्रदान करेंगे। ऋग्वेद में अमरत्व के लिए अनेक देवताओं की स्तुतियाँ की गई हैं, यथा –अग्नि की[7], वरुण की[8], विश्वदेवों की[9], मरुतों की[10] आदि। इस प्रकार ऋग्वेद में सुकृत्यों के फलों की बात तो की गई है किन्तु दुष्कृत्यों के फलों के विषय में कोई बात नहीं कही गई है। इससे कहा जा सकता है कि ऋग्वेद में कर्म–सिद्धांत अधूरा ही है। वैदिक ऋषि ब्रह्माण्डीय व्यवस्था को 'ऋत' कहते थे।[11] ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के अन्दर नैतिक व्यवस्था भी सन्निहित थी। वेदों के अनुसार ऋत सृष्टि का मौलिक नियम है। ऋत से ही सृष्टि संचालित हो रही है। इसी के कारण सूर्य, चन्द्र एवं तारे गतिशील हैं। वेदों में ऋत धर्म एवं कर्म के सिद्धांत से जुड़ा हुआ एक प्राकृतिक नियम है। ऋत को आचार–व्यवहार से भी जोड़ा गया है। इसे मानवीय आचार–व्यवहार के लिए एक नैतिक मार्गदर्शक माना गया है। देवताओं को ऋत के नियमों को पालन करने वाला माना गया है[12] और उनसे प्रार्थनाएं की गई हैं कि वे मनुष्यों को ऋत के मार्ग पर ले चलें। हालांकि ऋत में हमें कर्म–सिद्धांत की थोड़ी–सी ही झलक मिलती है। कर्म–सिद्धांत का पूर्ण विकास उपनिषदों में हुआ। उपनिषदों से पूर्व ब्राह्मण ग्रंथों में भी कर्म–सिद्धांत की अवधारणा का विकास देखने को मिलता है। ब्राह्मण–ग्रन्थों ने सत्कर्मों के फलों एवं दुष्कर्मों के प्रतिकार की चर्चा की है। शतपथ ब्राह्मण में दुष्कर्मों के प्रति प्रतिकार की भावना व्यक्त हुई है।[13] उस समय तक लोगों की ऐसी धारणा बन चुकी थी कि जो व्यक्ति इस लोक में किसी व्यक्ति को कष्ट पंहुचाएगा वह दूसरे लोक में उसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा कष्ट पायेगा।[14] ऋग्वेद में देवयान और पितृयान की संकल्पना देखने को मिलती है। ऋग्वेद का मानना है कि अधिकांश लोग पितृयान के द्वारा यम के राज्य पितृलोक में स्थान पाएंगे, बहुत कम ही लोग देवयान के द्वारा देवताओं के लोक में स्थान पाएंगे। वेदों ने कहा है कि अत्याधिक पाप कर्म करने वाले व्यक्ति को एक हजार सालों तक कई हजार सालों तक कष्ट भोगना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप उसे कई जन्म लेने पड़ते हैं।[15] बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित है कि मनुष्य के भविष्य जीवन का निर्माण उसके अपने कर्मों एवं व्यवहार से होता है। जो मनुष्य अच्छा कर्म करते हैं वे उत्तम योनियों को प्राप्त करते हैं और जो बुरे कर्म करते हैं वे निकृष्ट योनियों में जाते हैं।[16] इस उपनिषद् में कहा गया है कि मनुष्य काममय होता है अर्थात् कामना वाला होता है, कामना विशेष से इच्छा विशेष उत्पन्न होता है, इच्छा विशेष के अनुरूप वह कर्म विशेष का संपादन करता है और कर्म विशेष के अनुरूप उसे फल विशेष की प्राप्ति होती है। जिस विषय या वस्तु से मनुष्य का मन आसक्त रहता है, वह अपने कर्मफलों के साथ उसी को प्राप्त करता है और जो व्यक्ति कामनारहित है, जिसकी इच्छाएं समाप्त हो गयी हैं, वह आत्मकामी व्यक्ति ब्रह्म को प्राप्त

कर लेता है।[17] बृहदारण्यकोपनिषद् में ही एक उदाहरण के द्वारा यह समझाया गया है कि आत्मा किस प्रकार एक शरीर का त्याग कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है जैसे झिनगा एक घास के शीर्ष भाग पर पहुँचने पर दूसरे घास पर जाने के लिए गति करता है, उसकी ओर स्वयं को खींच लेता है और उस पर स्वयं को स्थित कर लेता है।[18] छान्दोग्योपनिषद् कहती है कि यज्ञ करने वाले, लोक–कल्याण करने वाले तथा दान देने वाले लोग मृत्यु के बाद चन्द्रलोक में स्थान प्राप्त करते हैं और पुण्य कर्मों का फल समाप्त हो जाने पर पुनः इस लोक में लौट आते हैं।[19] कौषी तकि उपनिषद् में भी देवयान एवं पितृयान का उल्लेख प्राप्त होता है।[20] कठोपनिषद् में यम ने नचिकेता को बताया है कि मृत्यु के पश्चात् कुछ लोग दैहिक अस्तित्व के लिए पुनः माता के गर्भ में प्रवेश करते हैं और कुछ लोग अपने गुण,विद्या एवं कर्मों के अनुसार वृक्ष आदि में परिवर्तित हो जाते हैं।[21] कठोपनिषद् में ही कहा गया है कि मनुष्य अन्न की तरह नष्ट हो जाता है और फिर अन्न की तरह ही पुनः उत्पन्न हो जाता है।[22] स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में पुनर्जन्म की अवधारणा को स्थापित किया है। उन्होंने अर्जुन से कहा कि 'हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत सारे जन्म हो चुके हैं। मैं उन सभी को जानता हूँ , किन्तु तुम नहीं जानते।[23] उन्होंने कहा कि जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा (व्यक्ति) पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त करता है।[24] जितने भी दर्शनों ने शरीर से भिन्न एक नित्य आत्मा की सत्ता स्वीकार की है, उन सभी ने पुनर्जन्म की अवधारणा को मान्यता प्रदान की है। इसके साथ ही इन सभी दर्शनों ने कर्म–सिद्धांत को भी एकमत से स्वीकार किया है। कर्म–सिद्धांत और पुनर्जन्म की अवधारणा दोनों एक–दूसरे से संबंधित हैं। ये दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। पुनर्जन्म का सिद्धांत यह स्वीकार करता है कि प्रत्येक जीवन पूर्व अस्तित्व या अस्तित्वों (जीवनों) के कर्मों का परिणाम या प्रतिफल है। गीता के बहुत सारे श्लोकों में पुनर्जन्म के सिद्धांत को मान्यता प्रदान की गई है (यथा– 2/12–13, 2/26–27, 4/8–9, 6/41–42, 7/16, 8/6, 8/15–16, 9/21)। सांख्य एवं योग दर्शन के अनुसार पुनर्जन्म का अर्थ है सूक्ष्म शरीर का एक स्थूल शरीर के नाश के पश्चात् दूसरे स्थूल शरीर में प्रवेश। इस प्रकार सांख्य और योग पुनर्जन्म की व्याख्या आत्मा के सहारे न करके सूक्ष्म शरीर के माध्यम से करते हैं।[25] न्याय–वैशेषिक दर्शन का मानना है कि शिशु का हँसना और रोना उसके पुनर्जन्म का परिचायक है। अबोध बालकों का हँसना और रोना उनके पूर्व जीवनों की अनुभूतियों की स्मृतियाँ कही जा सकती हैं।[26] बुद्ध ने भी पुनर्जन्म को स्वीकार किया है, परन्तु उन्होंने किसी नित्य आत्मा की सत्ता को माने बिना किया है। उन्होंने पुनर्जन्म की कुछ इस प्रकार से व्याख्या की है जिस प्रकार एक दीपक की ज्योति से दूसरे दीपक की ज्योति को प्रकाशित किया जाता है, उसी प्रकार एक जीवन की अंतिम अवस्था से भविष्य जीवन की प्रथम अवस्था का निर्माण होता है। जैन दर्शन ने भी पुनर्जन्म को स्वीकार किया है, आत्मा को इसने 'जीव' की संज्ञा दी है। शरीर की मृत्यु के बाद जीव अपने कर्मों के अनुसार पुद्गल–कणों को आकृष्ट करता है। इस प्रकार जीव को नया शरीर उसके पूर्वजीवन के कर्मों के अनुसार प्राप्त होता है। मीमांसा ने भी पुनर्जन्म को स्वीकार किया है। मीमांसकों का मानना कि धर्म और अधर्म के कारण ही आत्मा अनेक शरीरों में जन्म ग्रहण करता है। मोक्ष की अवस्था में आत्मा के धर्म और अधर्म हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं। वेदांत दर्शन पर अपने भाष्य में शंकराचार्य ने पुनर्जन्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह आत्मा (जीव) एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता हुआ सूक्ष्म तत्त्वों के साथ अथवा उनसे घिरा हुआ चलता है।[27] वेदान्त सूत्र में कहा गया है कि जो लोग यज्ञादि सम्पादित करते हैं वे चन्द्रलोक जाते हैं और जो ऐसा नहीं करते उन्हें दुष्कर्म का दोष लगता है और ऐसे लोग नरक के कष्टों को भोगने के लिए यमलोक जाते हैं और तत्पश्चात् पुनः पृथिवी पर लौट आते हैं। श्रद्धा एवं तप के मार्ग का अनुसरण करने वाले लोग देवयान मार्ग से जाते हैं और जो लोग यज्ञ, दान एवं जन–कल्याण के मार्ग का अनुसरण करते हैं वे पितृयान मार्ग से जाते हैं। जो लोग इन दोनों में से किसी भी मार्ग का अनुसरण नहीं करते वे कीट, पतंग आदि निम्नतम कोटि के जीवों में जन्म लेते हैं।[28] महाभारत के वनपर्व में युधिष्ठिर को दुःख उठाते हुए देख द्रौपदी को बड़ा आश्चर्य होता है कि सदाचारी एवं सम्मानित व्यक्ति दुःख भोग रहा है और दुर्योधन जैसा दुष्ट और दुराचारी सुखपूर्वक जीवनयापन कर रहा है। उसके मन में ईश्वर के प्रति क्षोभ उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगी कि ईश्वर सभी जीवों के साथ माता–पिता–सा व्यवहार नहीं करता, वह भी सामान्य मनुष्य की तरह शीघ्रकोपी और चण्डस्वभाव वाला है।[29] तब युधिष्ठिर ने द्रौपदी को समझाया कि वह

नास्तिकों की तरह बातें कर रही है और अपने वचनों से ईश्वर का अपमान कर रही है। उन्होंने कहा व्यक्ति जो कुछ अपने जीवन में प्राप्त करता है वह उसके अपने ही कर्मों का फल होता है। अन्त में द्रौपदी को यह बात समझ में आ गयी कि मनुष्य अपने वर्तमान जीवन में अपने पूर्व जन्मों के कर्मों का फल भोग रहा होता है।[30] पुराणों ने भी यह बात स्वीकार की है कि जीव को अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। अनेकों जन्मों के बाद भी कर्मों का नाश नहीं होता है 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। नाभुक्तं क्षीयते कर्म ह्यपि जन्मशतैः प्रिय।[31] कर्मफलों को भोगे बिना कर्मों का नाश नहीं होता है। पूर्वजन्मों के कर्म से उत्पन्न बन्धन को कोई हटा नहीं सकता है– उपभोगादृते तस्य नाश एव न विद्यते। प्राक्तनं बन्धनंध्बंधकं कर्म कौ न्यथा कर्तुमर्हति।[32] व्यक्ति अपने कर्मों से देवता बन सकता है, मनुष्य बन सकता है, पशु–पक्षी बन सकता है या क्षुद्र जीव या स्थावर (वृक्ष या पाषाण खण्ड) बन सकता है।[33] अभिज्ञान शाकुन्तलं में सातवें अंक में जब दुष्यन्त और शकुन्तला का पुनर्मिलन होता है, तब शकुन्तला दुष्यन्त से कहती है कि अवश्य ही पूर्वजन्मों के मेरे दुष्कृत्य इस जन्म में सुकृत्य को बाधित कर प्रतिफलित हो गये थे जिससे मेरा आपसे वियोग हुआ, इसमें आपका कोई दोष नहीं।[34]

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा में कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत अपने विकसित रूप में दिखाई पड़ता है। एकमात्र चार्वाक दर्शन ही ऐसा है जो इसमें विश्वास नहीं रखता है, क्योंकि चार्वाक नित्य आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता है और वर्तमान जीवन को ही एकमात्र जीवन मानता है और इसलिए वह इस जीवन को सुखोपभोग से जीने की सलाह देता है। इस दर्शन में नैतिकता, धार्मिकता, मानवता इन चीजों का कोई स्थान नहीं है इसीलिए भारतीय समाज में इस दर्शन का महत्त्व शून्य के बराबर है। अतः इस दर्शन के कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांत में अनास्था से भारतीय चिंतन परंपरा में कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता है। भारतीय मनीषियों के साथ–साथ विदेशी चिंतको ने भी कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धांत को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया है जिसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। यह बात सत्य है कि सभी धार्मिक और नैतिक भावनाएं कर्म–सिद्धांत का आश्रय लेकर चलती हैं और कर्म–सिद्धांत पुनर्जन्म के सिद्धांत का आश्रय लेकर स्वयं को पूर्ण कर पाता है अथवा यों कहें कि दोनों ही सिद्धांत परस्पर एक–दूसरे का आश्रय लेकर चलते हैं और स्वयं को पूर्ण करते हैं। नित्य आत्मा की सत्ता है अथवा नहीं? पुनर्जन्म की अवधारणा सत्य है अथवा असत्य? ये सारे विवाद के विषय हैं परन्तु यह सत्य अवश्य है कि यदि मानव समाज में धार्मिकता, आध्यात्मिकता, नैतिकता, मानवता आदि को जीवित रखना है तो कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धांत को स्वीकार करना ही होगा ताकि मनुष्य सत्पथ पर चले, सत्कर्म करे, सद्व्यवहार करे, अन्य जीवों पर दया करे तथा प्रकृति एवं पर्यावरण की रक्षा करे।

सन्दर्भ सूची

1. काणे, पी. वी. (2019) *धर्मशास्त्र का इतिहास,* भाग–5, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 362।
2. वही, पृ. 378।
3. ऋग्वेद (10/16/4)
4. अथर्ववेद (3/28/6, 18/2/71)
5. वाजसनेयी संहिता (18/52)
6. ऋग्वेद (9/113/7–10)
7. वही (1/13/7, 4/58/1, 5/4/10, 6/7/4)
8. वही (5/63/2)
9. वही (10/52/5, 10/62/1)

10. वही (5/55/4)
11. वही (4/21/3, 10/190/1)
12. वही (1/23/5, 1/65/3)
13. शतपथ ब्राह्मण (12/9/1/1)
14. वही (11/6/1/3–6)
15. ऋग्वेद (10/161/4) य अथर्ववेद (3/11/4) य वाजसनेयी संहिता (25/22)
16. बृहदारण्यकोपनिषद् (4/4/5–7)
17. वही।
18. बृहदारण्यकोपनिषद् (4/4/3)
19. छान्दोग्योपनिषद् (5/10/5)
20. कौषीतकि उपनिषद् (1/2–3)
21. कठोपनिषद् (5/6–7)
22. वही (1/1/6)
23. श्रीमद्भागवतगीता (4/5)
24. वही (2/22)
25. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद (2023) *भारतीय दर्शन की रूपरेखा,* मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ. 17।
26. वही।
27. काणे, पी. वी. (2019) *धर्मशास्त्र का इतिहास,* भाग–5, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 362–363।
28. वही, पृ. 363।
29. महाभारत, वन पर्व (30/19 य 30/38–39)
30. वही (32/15–16, 20)
31. नारदीय पुराण, उत्तर भाग (29/18)
32. पद्मपुराण (2/81/48, 94/118)
33. वही (2/94/13)
34. चतुर्वेदी, वासुदेव कृष्ण (2009) *अभिज्ञानशाकुन्तलम्,* मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ. 284।

****